Himalayan J. Soc. Sci. & Humanities ISSN: 0975-9891
Vol. 13, (2018) 23-27

वैद्यकी पद्धति एक ऐतिहासिक अध्ययनः गढ़वाल के विशेष संदर्भ में।

नीलम नेगी

इतिहास विभाग, हे0न0ब0 गढ़वाल विश्वविद्यालय, पौड़ी परिसर, पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखण्ड

*Corresponding Author Email: n.negi888@gmail.com

Received: 15.08.2018; Revised: 21.09.2018; Accepted: 27.11.2018
©Society for Himalayan Action Research and Development

Abstract: प्रस्तुत शोध पत्र में गढ़वाल के ग्रामीण क्षेत्रों में वैद्यकी पद्धति का ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। वैद्यकी पद्धति का आधार आयुर्वेद है। आयुर्वेद संसार की प्राचीनतम चिकित्सा पद्धतियों में से एक है, जिसकी उत्पत्ति एवं विकास भारतीय उपमहाद्वीप में लगभग 5000 ई0 पू0 में हुई थी। आयुर्वेदिक चिकित्सक को वैद्य भी कहा जाता है। सभ्यता के विकास के साथ–साथ विभिन्न पेशों (व्यवसायों) की उत्पत्ति हुई। ऋग्वेद में वैद्य को भिषक् कहा गया है। हिमालयी क्षेत्रों में यह पद्धति उतनी ही पुरानी है जितनी कि भारतीय उपमहाद्वीप में। गढ़वाल (उत्तराखण्ड) के विभिन्न क्षेत्रों में वैद्यकी पद्धति प्राचीन समय से चली आ रही है। इस क्षेत्र में पैतृक पेशे के रूप में यह अनेक परिवारों में विकसित होती रही है और वर्तमान समय तक सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में चिकित्सा का प्रमुख साधन बनी रही है।

Keywords: वैद्यकी पद्धति, गढ़वाल

अध्ययन क्षेत्र का परिचय

प्रस्तुत शोध पत्र में उत्तराखण्ड राज्य के गढ़वाल सम्भाग के सीमान्त क्षेत्रों की आयुर्वेदिक पद्धति अथवा वैद्यकी का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। गढ़वाल क्षेत्र का प्राचीनतम प्रसंग स्कन्द पुराण के केदारखण्ड एवं महाभारत के वनपर्व में मिलता है। स्कन्द पुराण के केदारखण्ड में गढ़वाल की सीमाओं का भी वर्णन किया गया है कि यह क्षेत्र पचास योजन लम्बे और तीस योजन चौड़े क्षेत्र में विस्तृत है। यह दक्षिण से हरिद्वार से, उत्तर में हिमालय तक तथा पश्चिम में तमसा (टोसं) नदी से पूर्व में बौद्धाचंल (पटट्ी–बधाण) तक विस्तृत है[1]। वर्तमान में गढ़वाल उत्तर भारतीय राज्य उत्तराखण्ड का पश्चिमी संभाग है। इसके उत्तर में तिब्बत, पूर्व में कुमाऊँ संभाग, दक्षिण में उत्तर प्रदेश एवं उत्तरपश्चिम में हिमांचल प्रदेश है। गढ़वाल संभाग में सात जनपद रूद्रप्रयाग, चमोली, पौड़ी गढ़वाल, टिहरी गढ़वाल, उत्तरकाशी, हरिद्वार एवं देहरादून शामिल हैं। गढ़वाल के ऊपरी क्षेत्रों की जलवायु एवं भूगोल इसप्रकार का है कि जिसने एक समृद्ध जैवविविधता, सांस्कृतिक परम्परा एवं पौराणिकता का पोषण किया है। यहां निवास करने वाले जनसमुदाय एवं जनजातीय समुदाय पुराने समय से ही अपने जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं के लिये प्राकृतिक सम्पदा पर निर्भर रहे हैं।

शोध पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन में क्षेत्र भ्रमण के दौरान स्थानीय विद्वानों, जड़ी–बूटियों से चिकित्सा करने वाले लोगों और पेशेवर वैद्यों सहित ग्रामीण, बुजुर्ग महिलाओं के साक्षात्कार के द्वारा शोध विषय की जानकारी प्राथमिक स्रोत के रूप में प्रयोग की गई हैं। प्राथमिक स्रोत से प्राप्त जानकारी मौखिक रूप से प्राप्त की गयी है। द्वितीयक स्रोत के रूप में विभिन्न शोध पत्रों व साहित्यिक साक्ष्यों का उपयोग क्षेत्र की परम्परागत विशेषताओं और प्रथा–चलनों के परिपेक्ष में जानकारी प्राप्त करने के लिए किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में गढ़वाल के दस पेशेवर वैद्यों एवं लगभग तीस स्थानीय लोगों एवं अनुभवी उपचारकों के साक्षात्कार को सम्मिलित किया गया है।

अध्ययन

प्राचीन भारतीय साहित्य में वैद्य शब्द का प्रयोग कई स्थानों पर शासकों की चिकित्सा करने वाले राज वैद्यों एवं प्रजा चिकित्सकों के लिए किया गया है। ऋग्वेद में वैद्य को भिषक कहा जाता है[2] रामायण में रावण के राजवैद्य सुषेण का उल्लेख मिलता है तो महाभारत में भीष्म पर्व में युद्ध भूमि में वैद्यों के होने की बात कही गयी है[2]। वैदिक साहित्य में वर्णित विभिन्न व्यवसायों में वैद्य[3] का भी एक व्यवसाय बताया गया है। पुराणों व स्मृति ग्रन्थों में भी इस पेशे के बारे में वर्णन मिलते हैं। रामायण में ऐसे वैद्यों का वर्णन मिलता है जो राजदरबार में रहते थे और चिकित्सा के साथ–साथ मृत शरीर को परिरक्षित रखने में निपुण थे[4]। मध्यकाल में मुगल बादशाहों द्वारा राजवैद्यों की नियुक्ति के उल्लेख मिलते हैं। मुगलों के दरबार में (औरंगजेब के काल को छोड़कर) यूनानी हकीमों के साथ आयुर्वेदिक वैद्यों की उपस्थिति का वर्णन मिलता है[5]। बंगाल के नबाव मीर जाफर (1757–1762 ई0) का अपना एक व्यक्तिगत वैद्य था जिसका नाम रामसेन कविन्द्रमणि था। आधुनिक काल में पूर्ववर्ती वैद्यों द्वारा लिखित चिकित्सा साहित्य का समायोजन हुआ जिसमें विदेशी विद्वानों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

वैद्यकी का नाता गढ़वाल क्षेत्र से प्राचीन काल से ही रहा है। काशीराज देवोदास धन्वन्तरि एक बार अपने प्रबल शत्रु है राजकुमारों से युद्ध में पराजित होकर भाग निकले और भारद्वाज की शरण में गये। कुछ आचार्यों व इतिहासकारों का मानना है कि है राजकुमारों से पराजित होने के बाद उन्होंने हिमालय क्षेत्र में एक नयी काशी की स्थापना की जो काशी के उत्तर में होने के कारण उत्तरकाशी कहलायी। यहीं पर गुरूकुल बना कर उन्होंने सुश्रुत औषधेनव, करवीर्य, गोपुररक्षित, वैतरण आदि शिष्यों को उपदेश दिये। आचार्य ज्योतिर्मित्र भी इसी धारणा के समर्थक थे[6]। गढ़वाल में आयुर्वेद का ज्ञान प्राचीन काल से ही विद्यमान था। महाभारत में उल्लेख है कि खश लोगों ने राजा युद्धिष्ठिर को पिपलीक स्वर्ण भष्म, चंवर एवं मधु आदि भेंट किया था[7]। अलकनन्दा घाटी की रेत से इकटठा किये गये स्वर्ण को पिपलीक स्वर्ण कहा जाता था और इस स्वर्ण से निर्मित भष्म को आयुर्वेद में उपचार हेतु उत्तम माना जाता था। औरंगजेब के काल में राजपरिवार की एक स्त्री जो उदरशूल से पीड़ित थी, का उपचार उस समय के चमोली जनपद के ग्राम–स्यंपुरी के जाने–माने वैद्य मोती सिंह वर्त्वाल ने किया था[8]। जनपद चमोली के बर्त्वाल जाति के लोगों को जगददेव पंवार के वंशज माना जाता है। अनुश्रुतियों के अनुसार राजा कनकपाल[9] के चांदपुर गढ़ी पदार्पण के लगभग पचास वर्षों के बाद धारनगरी से जगददेव पंवार उत्तराखण्ड की यात्रा पर आया और अलकनन्दा के दायीं ओर प्राचीन वर्तगढ़ (वर्तमान में जनपद चमोली में चांदनीखाल नामक स्थान) में निवास करने लगे। वह अपने साथ लोहार, बुनकर, वैद्य, भारवाहक, वादी (गीतों, वाद्य यंत्रों के द्वारा लोगों का मनोरंजन करके अपनी जीविका चलाने वाला एक समुदाय), हलिया (हल जोतने वाले) आदि लोगों को भी अपने साथ लेकर आये थे। जगददेव पंवार का वर्णन गढ़वाल क्षेत्र के लोकगीतों में भी मिलता है, इनके वंशज चमोली के नागपुर परगने के रडुवा, मसोली, सेणजी, कुंडा, मालकोटी, गडील, दानकोट, स्यूंपरी, गोरणा आदि गांवों में निवास करते हैं[10]। बर्त्वाल जाति प्राचीन समय से ही वैद्यकी के लिये जानी जाती है। आज भी इनके पैतृक घरों में डोंगी (लकड़ी की बनी खरल), हरड़ (औषधियों को कूटने का लकड़ी का इमानदस्ता), करद (लकड़ी या अष्टधातु की बनी चम्मच या करछुल), कपड़ मिटट्ी (मुल्तानी मिटट्ी) से सने औषधियों को पकाने के घड़े और सुराहियां आदि देखे जा सकते है।

गढ़वाल क्षेत्र में कृषि एवं पशुपालन आजीविका के प्रमुख साधन रहे हैं। इनके साथ ही बहुत से लोग व्यापारी, मन्दिर के पुजारी, ज्योतिष, कर्मकाण्ड करने वाले पण्डित, औली, जगरिया, बादी, हुड़किया, दास, हलिया, कोली, झूलिया, राजभृत्य, चर्मकार, भारवाही, मौनपाल आदि रूपों में जीवन यापन करते थे। यायावर जीवन से स्थायी समाज के निर्माण की इस प्रक्रिया में आजीविका के विभिन्न साधनों का विकास हुआ। कृषि के अतरिक्त लोग विभिन्न व्यवसायों तथा राजकीय सेवाओं के द्वारा भी जीवन यापन करते थे। तालेश्वर एवं पाण्डुकेश्वर दानपत्रों में स्थान नामों के रूप में विभिन्न व्यवसायों का भी स्वरूप स्पष्ट होता है[11]। वैद्यकी भी एक अतिरिक्त व्यवसाय के रूप में रही तथा वैद्यकी की भांति जड़ी बूटियों को इकटठा करने वालों का एक पेशा था। ये दोनों पेशे एक दूसरे के पूरक थे। तालेश्वर दानपत्र में मलखान शब्द का प्रयोग हरताल खोदने वाले व जड़ी–बूटी इकटठ्ा करने वाले के लिये हुआ है[12]। प्राचीन काल से ही गढ़वाल के जनपद चमोली के मल्ला नागपुर परगने, पेनखण्डा व जोशीमठ विकासखण्ड के अन्य क्षेत्रों में भोटिया जनजाति के लोग व तिब्बती लोग जिन्हें डोलबा कहा जाता था, जड़ी–बूटियां इकट्ठा करते थे तथा

इनका व्यापार करते थे। स्वतन्त्रता से पूर्व जनपद चमोली के मठ गांव के वैष्णव लोग जड़ी–बूटियां इकट्ठा करने के लिये अधिकृत थे, इन्हें अंग्रेज सरकार द्वारा निविदा दी जाती थी। सन् 1930 ई0 के लगभग महेशानन्द नौटियाल नाम के व्यक्ति की नन्दप्रयाग में औषधियों की दुकान थी वह उस समय क्षेत्र के जाने माने औषधि व शिलाजीत के व्यापारी थे[13]। जनपद के अन्य क्षेत्रों के वैद्य उनसे औषधियां प्राप्त करते थे।

पुराने समय में वैद्यकी का पेशा पैतृक एवं परम्परागत था और इसमें जजमानी प्रथा का भी समावेश था। जनपद चमोली के थाला (थपलियाल), किमाठा (किमोठी), गोठिण्डा (सती), सिमाण (लखेड़ा), रोडु (भटट्), गिरिया (राण, नेगी, रावत), कोटमा (भटट्) रडुवा (वर्त्वाल) आदि गांव वैद्यों के गांवों के रूप में जाने जाते हैं। पौड़ी जनपद की बौड़ाई जाति वैद्यों की जाति मानी जाती थी[14]। श्रीनगर के पास उफल्डा के समीप वैद्यों का एक गांव था। स्कन्द पुराण के केदारखण्ड से पता चलता है कि ईसा के बाद 5वीं वे 10वीं सदी के बीच खश राजपूत व ब्राह्मणों का इस क्षेत्र में आना प्रारम्भ हुआ सम्भवतः ये जातियां उन्हीं आगन्तुकों में से थी। इस क्षेत्र का प्रत्येक गांव जजमानी प्रथा के अन्तर्गत बंटा होता था। और हर गांव का एक वैद्य होता था। यह क्षेत्र स्वतन्त्रता के बाद भी कई दशकों तक यातायात, शिक्षा एवं चिकित्सा साधनों से वंचित रहा। इन परिस्थितियों में यहां का जनमानस स्थानीय प्राकृतिक संसाधनों पर ही अधिक निर्भर रहा। यहां प्रचलित आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति के साथ ज्योतिष एवं तन्त्र– मन्त्र का मिला जुला रूप देखने को मिलता है। पेशेवर वैद्य चिकित्सा के साथ ज्योतिष व गंडा–ताबीज आदि निर्मित करने का भी कार्य करते थे।

वैद्यकी का कार्य सामान्य रूप से सभी जातियां करती थी। मौसमी बीमारियों में वैद्य अपने द्वारा निर्मित दवाओं को अपने साथ लेकर गांव–गांव का भ्रमण करते थे[15]। वैद्यों को उनकी सेवा के लिये घी, शहद, अन्न, आदि अन्य घरेलू उपयोग की वस्तुयें एवं धनराशि दी जाती थी। उन्नीसवीं शताब्दी तक वैद्य अपने परिवार के बुजुर्गों से वैद्यकी का ज्ञान प्राप्त करते थे। इस प्रकार के घरेलू प्रशिक्षण के अन्तर्गत सुदूर जंगलों से औषधियों को पहचान कर उनके उपयोगी भाग को निकाल कर लाना, दवाओं के निर्माण हेतु विभिन्न वनस्पतियों के अनुपात के अनुसार उनका उपयोग कर औषधियों को बटी (टेबलेट), रस, आसव (सिरप्), चूर्ण आदि का रूप देकर रोगी के अनुपान के लिये उनका अनुपात निश्चित करना आदि का प्रशिक्षण प्रशिक्षार्थी ग्रहण करता था। दवाओं के निर्माण के लिये विभिन्न उपकरणों का उपयोग करने के तरीके व औषधियों के शोधन के तरीके आदि का ज्ञान एक कुशल वैद्य के लिये आवश्यक होता था। इस प्रशिक्षण की प्रक्रिया की समयावधि निश्चित नहीं होती थी। बालक को बचपन से ही प्रशिक्षित करने की प्रक्रिया आरम्भ की जाती थी। औषधियों के एकत्रीकरण एवं निर्माण में शुभ–अशुभ दिन एवं ग्रह–नक्षत्र का भी ध्यान रखा जाता था[16]। वैद्यकी के पेशे में नाड़ी की जानकारी रखने वाले वैद्य को उच्चकोटि का वैद्य माना जाता था। नाड़ी शास्त्र के ज्ञान के आधार पर वैद्य रोग निदान करने में सक्षम होता था। निश्चित ही वैद्यों का ज्ञान वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित था। रसशास्त्र अथवा रसायन शास्त्र की जानकारी वैद्यों को होती थी। वैद्य, खनिज द्रव्यों के विज्ञान, खनिजों की प्रवृति, प्राप्ति स्थान एवं उनके गुण–दोष की वृहद जानकारी रखते थे। उन्हें औषधियों के भेद–उपभेद, ग्रहण की मात्रा क प्रभाव, शोधन की विधि, निर्माण की विधि, रस– परिपाक आदि का विस्तृत ज्ञान होता था। आयुर्वेद में औषधि निर्माण समय एवं श्रम साध्य कार्य होता है, इस कार्य में वैद्य परिवार के सभी सदस्य सहयोग करते थे[17]।

गढ़वाल में वैद्यकी की परम्परा मौखिक और लिखित दोनों रूपों में थी। कुछ लोगों के पास उनके पूर्वजों द्वारा लिखित पाण्डुलिपियां मिली हैं जो देवनागरी में उपलब्ध हैं इनमें हिन्दी भाषा के साथ गढ़वाली बोली व उर्दू के कुछ शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है। अध्ययन काल क दौरान प्राप्त पाण्डुलिपियों में ग्राम– रोड़धार (रूद्रप्रयाग) के वैद्य श्री चैतराम भटट् द्वारा दी गयी एक पाण्डुलिपि में देवनागरी के साथ गुरूमुखी का भी प्रयोग भी देखने को मिला है। वैद्य चैतराम भटट् का कहना है कि यह पाण्डुलिपि उन्हें उनके गुरू भवानी दत्त नौटियाल ग्राम–दिलमी (रूद्रप्रयाग) से प्राप्त हुई थी। उन्होंने इस पाण्डुलिपि में दो तान्त्रिक मंत्रों एवं आयुर्वेदिक नुस्खों के प्रयोग के लिये उन्हें दिया था। दो तान्त्रिक मन्त्र भवानी दत्त द्वारा लिखे गये थे लेकिन आयुर्वेदिक नुस्खे उसमें पहले से ही वर्णित थे। गुरूमुखी में वर्णित नुस्खों का प्रयोग भवानी दत्त न

भी कभी नहीं किया था क्योंकि वे इस भाषा को नहीं जानते थे न ही चैतराम भटट् इस भाषा को समझते थे। सम्भवतः भवानी दत्त ने भी इसे किसी अन्य से प्राप्त किया था। इस पाण्डुलिपि में विभिन्न रोगों के निदान का तरीका व उपचार सम्बन्धी नुस्खों के साथ आरोग्य बर्धनी बटी, मेथी पाक, बालचतुर्भज चूर्ण आदि का वर्णन मिलता है। क्षेत्र से प्राप्त पाण्डुलिपियों एवं मौखिक साक्षात्कार के आधार पर यह बात प्रकट होती है कि वैद्यों का क्षेत्र विस्तृत था, नित्य भ्रमणशीलता और अपने क्षेत्र के अतरिक्त ये अन्य क्षेत्रों में भी भ्रमण करते थे। जनपद के ही नहीं अपितु राज्य एवं देश के विभिन्न क्षेत्रों के वैद्यों के साथ भी इनके सम्पर्क थे। जिन जड़ी–बूटियों का प्रयोग वैद्य अपनी औषधियों में करते थे उनके प्राप्ति स्थान विभिन्न क्षेत्रों में थे जैसे अश्वगंन्धा, सर्पगन्धा, बायोविडिंग आदि औषधियां तराई क्षेत्रों में प्राप्त होती है, जबकि अतीस, कूठ, कड़वी आदि उच्च पर्वतीय स्थानों पर प्राप्त होने वाली औषधियां हैं, इनकी प्राप्ति के लिये भी वैद्य विभिन्न क्षेत्रों में गतिशील रहते थे। वैद्य हर प्रकार के रोगों का उपचार करते थे, स्त्री–पुरूषों व बच्चों की विभिन्न प्रकार की बीमारियों के उपचार के साथ ही पालतू पशुओं का उपचार भी इनके द्वारा किया जाता था।

उत्तरकाशी जनपद के जौनसारी समाज में जो नाड़ी विशेषज्ञ के साथ वानस्पतिक जड़ी–बूटियों का विशेषज्ञ होता है उसे जड़ियारा कहा जाता है। जड़ियारा पारम्परिक वैद्य की भांति होते है, विभिन्न औषधियों से ये बीमारों का उपचार करते है। जड़ियारा उस व्यक्ति को कहा जाता है जो औषधियों के प्रकारों व उनके विभिन्न प्रकार के उपयोग के बारे में जानता है। इस प्रकार जड़ियारा एक डॉक्टर की ही तरह होता है या डॉक्टर एक जड़ियारे की तरह होता है लेकिन उसका कार्य एक पारम्परिक उपचार कर्ता से अधिक समर्थ होता है और उसे एक पृथक वर्ग में रखा जाता है। जड़ियारे की विशेषज्ञता उसके नाड़ी ज्ञान के मूल्याकंन पर विशेष रूप से निर्भर करती है। एक विशेषज्ञ जड़ियारा मात्र नाड़ी देख कर यह बता सकता है कि किस प्रकार का मौसम, खान–पान बीमारी का कारण है। नाड़ी ज्ञान के साथ साथ उसे विभिन्न औषधीय जड़ी बूटियों का भी ज्ञान होता है, जो वह अन्य जड़ियारें से एक पवित्र प्रतिज्ञा लेकर सीखता है। इसके अतिरिक्त अन्य स्वस्थ्य सम्बन्धी कर्म जैसे मालिश या अंग मर्दन व शारीरिक व्यायाम भी उसके कार्य से जुड़े हुये होते हैं।

जड़ियारा सामान्यतः एक पारम्परिक वैद्य ही है। जड़ियारा का एक बहुत प्रचलित रूप सोनू उपचारक है। सोनू आंत के कीड़े होते हैं तथा जौनसारी इसे भोजन के पाचन के लिए लाभदायक मानते हैं। जौनसारी धारणाओं के अनुसार प्रत्येक मानव सोनू के भण्डार के साथ जन्म लेता है। सोनू आंतों के अन्दर सांमजस्य के साथ निवास करते हैं लेकिन ये व्रिदोष विकार के लिए अतिसंवेदनशील होते हैं। विशेषकर शिशुओं में नये खाद्य पदार्थों के सेवन से सोनू विकार होता है जिससे शिशु – डायरिया रोग होते हैं। सोनू उपचारकों को 'सोनू को शान्त करने वाला' भी कहा जाता है और ये जौनसार में जड़ियारा के प्रमुख वर्गों में से हैं।

अधिकतर मामलों में यह ज्ञान पिता के द्वारा पुत्र तक पहुँचता है। यह तब होता है जब पिता लोगों की सेवा करना कम कर देता है। ये जड़ी–बूटियों की औषधीयां एक ही परिवार में पीढ़ी दर पीढ़ी जीवित रहती हैं। इसके अतिरिक्त इन औषधियों को पवित्र एवं आध्यात्मिक मूल्यों से जोड़ा जाता है। एक पवित्र विधान के साथ प्रशिक्षार्थियों तक जड़ी–बूटियों के ज्ञान को हस्तान्तरित किया जाता है। इस कार्य की शुरुवात के लिये पुरोहित से एक शुभ दिन निकलवाया जाता है। दोनों गुरू और शिष्य इस कार्य को ब्रह्म मुहुर्त में करते है, इस रीति के पूरे होने के पूर्व वे कुछ खा या पी नहीं सकते।

परिवर्ति काल में ग्रामीण स्तर पर प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर लोग आयुर्वेद के ज्ञान के लिये देश के विभिन्न क्षेत्रों में स्थापित शिक्षा संस्थानों से भी शिक्षा प्राप्त करने लगे थे। शासन के द्वारा समय–समय पर आयुर्वेदिक चिकित्सा के लिये बनाये गये नियमों ने भी वैद्य परिवारों के लोगों को औपचारिक शिक्षा ग्रहण करने के लिये बाध्य किया[18]। बीसवीं सदी में औपचारिक शिक्षा प्राप्त वैद्यों की संख्या में बढ़ोत्तरी हुई। सन्1917 में आचार्य गणनासेन ने ऋषिकेश में धन्वन्तरी आयुर्वेदाश्रम, देहरादून में मंगलादेवी आयुर्वेदिक कॉलेज, ऋषिकुल आयुर्वेदिक कॉलेज हरिद्वार व सन् 1949 ई0 में उत्तराखण्ड विद्यापीठ, गुप्तकाशी, जिला–रूद्रप्रयाग, जैसे आयुर्वेदिक शिक्षण संस्थानों की स्थापना ने इस क्षेत्र में अधिक योगदान दिया। इन संस्थानों से प्रशिक्षण प्राप्त वैद्य आज भी विभिन्न गांवों व कस्बों में अपनी सेवायें दे रहे हैं।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवरण के आधार पर,स्पष्ट होता है कि वैद्यकी हिमालयी क्षेत्रों में चिकित्सा का एक प्राचीन पेशा था। जो आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति के अनुसार ही वानस्पतिक औषधियों के आधार पर चिकित्सा का एक तरीका था। यह पैतृक व्यवसाय के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहा। जब यातायात और शिक्षा के साधनों एवं स्वास्थ सुविधाओं की कमी थी तब वैद्यकी ही इन सुदूर सीमान्त क्षेत्रों में चिकित्सा की रीढ़रज्जु रही, आज भी इन क्षेत्रों में इसके अवशेष देखे जा सकते हैं। वैद्यों के द्वारा लिखित नुस्खे आज भी पारम्परिक रूप से जनस्वास्थ के लाभ हेतु प्रयोग किये जाते हैं। कुछ लोगों ने अपने पूर्वजों द्वारा लिखित इन नुस्खों को संरक्षित भी रखा ह

[1] – भटट्ाचार्य, पं0 वृजरंजन, स्कन्द पुराणन्तर्गत, केदारखण्ड ।। 28।।

[2] – शर्मा ताराचन्द, वैद्य, आयुर्वेद का परिचयात्मक इतिहास, नाथ पुस्तक भण्डार हरियाणा, पृष्ठ–261।

[3] –ऋग्वेद–पूर्वोक्त।

[4] – नारायणस्वामी, बी0 " ओरिजिन एण्ड डेवलपमेन्ट ऑफ आयुर्वेद", एनसेन्ट साइंन्स ऑफ लाइफ, भाग–1, संख्या–1, जुलाई 1981, पृष्ठ–3।

[5] – रिजवी, एस0 अली नदीम, "फिजिसियनस् एण्ड प्रोफेसनल्स इन मिडिवल इण्डिया", डिजीस एण्ड मेंडिसिन इन इण्डिया, सम्पा0– दीपक कुमार, इण्डियन हिस्ट्री कॉग्रेस,2001, पृष्ठ–42।

[6] – बेदार, सुदीप सहाय, शर्मा शशि, शर्मा डी0 एन0,"भगवान धन्वन्तरि परिचय' उत्तराखण्ड के परिपेक्ष्य में" विश्व आयुर्वेदिक पत्रिका, उत्तराखण्ड विशेशांक, 117, विधायक आवास, राजेन्द्र नगर, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, दिसम्बर 2007, पृष्ठ– 8,9।

[7] – महाभारत।

[8] – शोध काल के दौरान स्थानीय लोगों से प्राप्त जानकारी के आधार पर।

[9] –सन् 888 ई0 में राजा कनक पाल का प्रारम्भ माना जाता है।

[10] – रावत मीनाक्षी, "मवाकोट में बाबा जगददेव पंवार की पूजा होती है।" गढ़ नंदनी, बद्री– केदार विकास समिति, देहरादून की बार्षिक स्मारिका, अंक–5, 2013–14, पृष्ठ–104–015।

[11] –त्रिपाठी किरन, उत्तराखण्ड का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक भूगोल, ज्ञानोदय प्रकाशन नैनीताल, 2006, पृष्ठ–252।

[12] – तदैव।

[13] –बर्त्वाल, योगम्बर सिंह, साक्षात्कार, ग्रम–रडुवा, जिला–चमोली, 15 फरवरी, 2014।

[14] –वैद्य हरिदत्त शास्त्री (बौड़ाई),साक्षात्कार, रत्ना बाजार, भद्रौजखान, अल्मोड़ा, 17 अगस्त, 2010।

[15] – किमोठी राधाकृष्ण वैद्य, साक्षात्कार, ग्रम–किमोठा, जिला–रूद्रप्रयाग, 5 नबम्बर 2008।

[16] – नेगी, महिपाल सिंह, उत्तराखण्ड के वैद्यों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, अप्राकशित शोध ग्रन्थ, गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर, 2004, पृष्ठ–148।

[17] –भटट्, मुरलीधर वैद्य, साक्षात्कार, ग्राम– कोटमा, जिला– रूद्रप्रयाग।

[18] –थपलियाल, सुरेशानन्द, आयुर्वेदाचार्य, साक्षात्कार, ग्राम–थाला, जिला–चमोली, 8 अक्टूबर, 2009।

****